CHRONICLE

Nurturing Talent Since 1990

2006-2022

17 वर्ष हल प्रश्न-पत्र
सिविल सेवा मुख्य परीक्षा

हिन्दी साहित्य

प्रश्नोत्तर रूप में

सिविल सेवा परीक्षा के पाठ्यक्रम पर आधारित

17 वर्ष (2006-2022)

अध्यायवार मुख्य परीक्षा हल प्रश्न-पत्र

हिन्दी साहित्य

प्रश्नोत्तर रूप में

सिविल सेवा परीक्षा के लिए

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए समान रूप से उपयोगी

संपादकः एन. एन. ओझा
(सिविल सेवा परीक्षाओं के मार्गदर्शन में 30 से अधिक वर्षों का अनुभव)
लेखन एवं प्रस्तुतिः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

पुस्तक के संबंध में

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम पर आधारित विगत 17 वर्षों (2006-2022) के प्रश्नों का अध्यायवार हल

प्रश्नों को हल करने की प्रकृतिः पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में दिया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हो, तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हो। पुस्तक में प्रश्नों के इतर भी विशिष्ट जानकारी को उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि छात्र इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।

पुस्तक का उपयोग कैसे करें?: इस पुस्तक का उपयोग छात्र अपने उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृति व प्रकृति को समझने के लिये कर सकते हैं। किसी भी परीक्षा के विगत वर्षो के प्रश्न इसमें सबसे लाभदायक होते हैं। अभ्यर्थी पुस्तक में दी गई सामग्री का इस्तेमाल बिंदुवार, निश्चित शब्द सीमा का पालन, उप-शीर्षक, एवं आरेख, आदि का प्रयोग अपने उत्तर लेखन शैली के अभ्यास हेतु आधुनिक परिपेक्ष में कर सकते हैं। पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर उसके सम्बंधित वर्ष के अनुसार ही दिया गया है।

हिंदी साहित्यः एक वैकल्पिक विषय के रूप मेंः सिविल सेवा परीक्षा के वैकल्पिक विषयों की सूची में भी हिन्दी साहित्य अभ्यर्थियों का एक पसंदीदा विषय है। हिंदी माध्यम के छात्रों का इस विषय की ओर सहज रुझान रहा है। इस विषय की लोकप्रियता का कारण इसका रुचिकर होने के साथ-साथ अंकदायी होना भी है। इसका प्रमुख कारण है- अंकदायी विषय, हिन्दी माध्यम के लिए सुरक्षित विषय, सहज व रुचिकर, 3-4 माह में तैयारी संभव, करेंट अफेयर्स से अपडेट करने की जरूरत नहीं, निश्चित और स्पष्ट पाठ्यक्रम, लेखन कौशल का विकास। इसके पाठयक्रम को इस प्रकार से विभाजित कर तैयार किया गया है, कि विषय का चयनात्मक अध्ययन किया जा सके।

यह पुस्तक छात्रों को संघ लोक सेवा आयोग के मुख्य परीक्षा के अलावा राज्य लोक सेवा आयोगों (उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं झारखण्ड) के बदले हुए पाठ्यक्रम में आयोजित होने वाले सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के हिंदी साहित्य के प्रश्न पत्र में उपयोगी साबित होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

विषयवार हल प्रश्न-पत्र 2006-2022

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022 (प्रथम प्रश्न-पत्र).....1-23
सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022 (द्वितीय प्रश्न-पत्र).....24-41

प्रथम प्रश्न-पत्र

खण्ड- 'क'

हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास

1. अपभ्रंश, अवहट्ट और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप.....1

2. मध्यकाल में ब्रज और अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास.....13

3. सिद्ध-नाथ साहित्य, खुसरो, संत साहित्य, रहीम आदि कवियों और दक्खिनी हिन्दी में खड़ी बोली का प्रारंभिक स्वरूप.....27

4. उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली और नागरी लिपि का विकास.....46

5. हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का मानकीकरण.....56

6. भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास 62

7. हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक और तकनीकी विकास.....81

8. नागरी लिपि की प्रमुख विशेषताएं और उसके सुधार के प्रयास तथा मानक हिन्दी का स्वरूप.....94

9. मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना.....100

खण्ड- 'ख'

हिन्दी साहित्य का इतिहास

10. हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता और महत्व तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा.....112

11. हिन्दी साहित्य के प्रमुख काल.....118

(क) **आदिकाल:** सिद्ध, नाथ और रासो साहित्य।
प्रमुख कवि: चंदबरदाई, खुसरो, हेमचंद्र, विद्यापति।

(ख) **भक्ति काल:** संत काव्य धारा, सूफी काव्यधारा, कृष्ण भक्तिधारा और राम भक्तिधारा।
प्रमुख कवि: कबीर, जायसी, सूर और तुलसी।

(ग) **रीतिकाल:** रीतिकाव्य रीतिबद्धकाव्य, रीतिमुक्त काव्य
प्रमुख कवि: केशव, बिहारी पदमाकर और घनानंद।

(घ) **आधुनिक काल:** नवजागरण, गद्य का विकास, भारतेन्दु मंडल

प्रमुख लेखक: भारतेन्दु, बाल कृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र।

आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां: छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीत, समकालीन कविता।
प्रमुख कवि: मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर 'प्रसाद' सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', सच्चिदानंद वात्स्यायन' 'अज्ञेय', गजानन माधव मुक्तिबोध, नागार्जुन।

12. कथा साहित्य.....164

(क) उपन्यास और यर्थाथवाद
(ख) हिन्दी उपन्यासों का उद्भव और विकास
(ग) **प्रमुख उपन्यासकार**
प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल, रेणु और भीष्म साहनी
(घ) हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास
(ङ) **प्रमुख कहानीकार**
प्रेमचन्द्र, जयशंकर 'प्रसाद', सच्चिदानंद वात्स्यायन, 'अज्ञेय,' मोहन राकेश और कृष्णा सोबती।

13. नाटक और रंगमंच.....186

(क) हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास।
(ख) प्रमुख नाटककार : भारतेन्दु, जयशंकर 'प्रसाद', जगदीश चंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा, मोहन राकेश।
(ग) हिन्दी रंगमंच का विकास।

14. आलोचना.....205

(क) हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास-सैद्धांतिक, व्यावहारिक, प्रगतिवादी, मनोविश्लेषणवादी, आलोचना और नई समीक्षा।

(ख) **प्रमुख आलोचक**
रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा और नगेन्द्र।

15. **हिन्दी गद्य की अन्य विधाएं**.....212
ललित निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा वृतान्त।

द्वितीय प्रश्न-पत्र

खण्ड- 'क' (पद्य साहित्य)

1. **कबीर** : कबीर ग्रंथावली (आरंभिक 100 पद) संपादक: श्याम सुन्दरदास.....229
2. **सूरदास:** भ्रमरगीत सार (आरंभिक 100 पद) संपादक: रामचंद्र शुक्ल.....240
3. **तुलसीदास** : रामचरित मानस (सुंदरकाण्ड) कवितावली (उत्तर काण्ड).....251
4. **जायसी** : पदमावत (सिंहलद्वीप खण्ड और नागमती वियोग खण्ड) संपादक: श्याम सुन्दरदास.....263
5. **बिहारी** : बिहारी रत्नाकर (आरंभिक 100 दोहे) संपादक: जगन्नाथ दास रत्नाकार.....272
6. **मैथिलीशरण गुप्त:** भारत भारती.....281
7. **जयशंकर 'प्रसाद':** कामायनी (चिंता और श्रद्धा सर्ग).....287
8. **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला':** राग-विराग (राम की शक्ति पूजा और कुकुरमुत्ता) संपादक: राम विलास शर्मा.....297
9. **रामधारी सिंह 'दिनकर':** कुरूक्षेत्र.....306
10. **अज्ञेय** : आंगन के पार द्वार (असाध्य वीणा).....312
11. **मुक्ति बोध** : ब्रह्मराक्षस.....318
12. **नागार्जुन** : बादल को घिरते देखा है, अकाल और उसके बाद, हरिजन गाथा.....331

खण्ड- 'ख' (गद्य साहित्य)

1. **भारतेन्दु** : भारत दुर्दशा.....339
2. **मोहन राकेश** : आषाढ़ का एक दिन.....352
3. **रामचंद्र शुक्ल** : चिंतामणि (भाग-1) (कविता क्या है, श्रद्धा और भक्ति).....361
4. **निबंध निलय, संपादक:** डॉ. सत्येन्द्र, बाल कृष्ण भट्ट, प्रेमचन्द, गुलाब राय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राम विलास शर्मा, अज्ञेय, कुबेर नाथ राय..... 372
5. **प्रेमचंद** : गोदान, 'प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियां, संपादक: अमृत राय मंजुषा : प्रेम चंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियां, संपादक : अमृत राय 379
6. **प्रसाद** : स्कंदगुप्त.....394
7. **यशपाल** : दिव्या.....402
8. **फणीश्वरनाथ रेणु:** मैला आंचल.....409
9. **मन्नू भण्डारी:** महाभोज.....417
10. **एक दुनिया समानान्तर:** राजेन्द्र यादव (सभी कहानियां) संपादक: राजेन्द्र यादव.....422

◆❖◆❖◆❖◆

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2022
(प्रथम प्रश्न-पत्र)

खण्ड `क' (हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

अपभ्रंश, अवहट्ट और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप

प्र. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: अपभ्रंश, आधुनिक भाषाओं के उदय से पहले उत्तर भारत में बोलचाल और साहित्य रचना की सबसे जीवन्त और प्रमुख भाषा (लगभग 6 ठी से 12 वीं शताब्दी में) थीं।

- **भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से** अपभ्रंश भारतीय आर्यभाषा के मध्यकाल की अंतिम अवस्था है, जो प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की स्थिति है।
- खड़ी बोली में हिन्दी के भाषिक और साहित्यिक विकास में जिन भाषाओं का योगदान रहा है, उनमें अपभ्रंश का महत्वपूर्ण स्थान है।

भाषिक योगदान (ध्वनिगत)

मध्यकालीन आर्यभाषाओं में घटित ध्वनि परिवर्तनों को अपनाकर उन्हें हिन्दी में समाहित कर दिया गया। अपभ्रंश में ध्वनिपरिवर्तन के जितने भी नियम थे, हिन्दी में पूर्ववत प्रयोग होते रहे।

उदा०- यत् = जत् जो

- संस्कृत की जिन नियमों को अपभ्रंश ने ग्रहण नहीं किया वे हिन्दी में भी नहीं आ पायी।

उदा०-'ऋ','ऌ'

- संस्कृत की 'ड़' 'ढ़' ध्वनियां अपभ्रंश में पहली बार प्रयुक्त हुई जिन्हें हिन्दी में ग्रहण कर लिया गया।
- अन्त्य स्वर के लोप की प्रवृत्ति हिन्दी में अपभ्रंश से ग्रहण की गयी।

उदा०- अग्नि = आग

- अपभ्रंश में क्षतिपूरक दीर्घाकरण का नियम हिन्दी में भी चलता रहा।

उदा०- सच्च = सांच, अज्ज = आज

- संस्कृत के पंचमाक्षर के स्थान पर अपभ्रंश में अनुस्वार का प्रयोग हुआ। इसे हिन्दी में भी अपनाया गया।

उदा०- पञ्च = पांच, कम्पन = कपन, दण्ड = दंड

- संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति अपभ्रंश में थी। हिन्दी में इसे अपनाने में उच्चारण सरल हो गया।

उदा०- चतुष्क = चौक

- बहुत सी महाप्राण ध्वनियों (ख, घ, थ, ध, भ) के स्थान पर 'ह' कर देने की प्रवृत्ति प्राकृतों से चलती हुई अपभ्रंश-अवहट्ट के माध्यम से हिन्दी तक बढ़ती रही।

उदा०- कथानिका = कहानी

- हिन्दी में अधिकांश तद्भव शब्द सीधे संस्कृत से नहीं आये, वरन् पहले उनका अपभ्रंश में रूप परिवर्तन हुआ, उसके बाद हिन्दी में उसे ग्रहण किया गया।

उदा०- हस्त = हत्थ = हाथ

व्याकरणिक योगदान

संस्कृत में संज्ञाओं के अनेक तिर्यक रूप बनते हैं, परन्तु अपभ्रंश में कम होकर तीन ही रह गये तथा हिन्दी में भी यही प्रचलित हुआ। संस्कृत की रूप-रचना का जो संक्षिप्तीकरण अपभ्रंश में हुआ, वह हिन्दी में भी प्रचलित हुआ।

- अपभ्रंश कुछ-कुछ वियोगात्मक भाषा बन रही थी, अर्थात् विकारी शब्दों (संज्ञा सर्वनाम विशेषण और क्रिया) का रूपान्तरण संस्कृत की विभक्तियों से मुक्त होकर उपसर्गों और स्वतन्त्र शब्दों या शब्द-खण्डों की सहायता से होने लगा था।
- इससे भाषा के सरलीकरण की प्रक्रिया तेज हो गयी। हिन्दी लगभग पूर्णतया वियोगात्मक भाषा बन गयी।
- हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले सर्वनामों का निकटतम रूप अपभ्रंश में निर्मित हुआ।

उदा०- मइ = मैं, तुहुं = तुम

- विभक्तियों के लिये प्रयुक्त परसर्ग की रूप-रचना भी अपभ्रंश से ग्रहण की गयी। संस्कृत के करण और अपादान कारक अपभ्रंश में एक हो गये, हिन्दी में भी यही मान्य हुआ।
- अपभ्रंश तक आते-आते लिंग दो (पुल्लिंग और स्त्रीलिंग) और वचन दो (एकवचन और बहुवचन) रह गये थे, यही हिन्दी में भी स्वीकृत हुआ।
- संस्कृत में काल के निर्धारण के अनेक जटिल विधियां थी, परन्तु अपभ्रंश में उनके केवल सामान्य रूप ही रह गये, तथा हिन्दी में भी काल-सम्बन्धी रचना की सरल प्रक्रिया अपना ली गयी।
- संस्कृत में संयुक्त क्रिया के प्रयोग की प्रवृत्ति नहीं है। यह प्रवृत्ति अपभ्रंश से हिन्दी में आयी।

उदा०- आया, आ गया, आ बैठा, आ चुका

- अपभ्रंश में कुछ धातुएं देशी आधार पर बनायी गयी हैं जिनके स्रोत संस्कृत में नहीं मिलते। इन्हें हिन्दी में अपनाया गया।

उदा०- छड़ = छोड़, टक्क = टेक, चक्ख = चख

- संख्यावाची विशेषणों को भी अपभ्रंश से ग्रहण किया गया।

उदा०- एक, दोउ, तीनि, चार, पांच

खण्ड 'ख' (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा

प्र. कबीर की काव्य-भाषा (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: कबीर भले ही पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु घुमक्कर स्वभाव का होने के कारण उनकी भाषा में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पूर्वी हिंदी, पंजाबी आदि का सम्मिश्रण मिलता है, जिससे उसे पंचमेल खिचड़ी या साधुक्कड़ी कहा जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

- भाषा की भांति शैली भी अनिश्चित एवं विविध रूपात्मक है। उनका समस्त काव्य मुक्तक है और गेय शैली में हैं। भाव के अनुसार उनकी शैली भी बदलती जाती है।

1. **खण्डनात्मक शैली:** कबीर ने धर्म के नाम पर प्रचलित रूढ़ियों एवं परम्पराओं का डटकर विरोध किया है। ऐसे स्थलों पर उनके कथन में बुद्धिवाद एवं अक्खड़पन का प्राधान्य रहता है। ये कथन मर्म पर सीधी और करारी चोट करते हैं, तीखा व्यंग्य इनके शैली की प्रमुख गुण है। ऐसे अवसरों पर प्रयुक्त शैली को खण्डनात्मक शैली कहा जाता है।
2. **अनुभूतिव्यंजक शैली:** यह शैली कबीर के साहित्यिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है। पदों में गीतिकाव्य के समस्त लक्षण- मार्मिकता, अनुभूति की गहराई, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता आदि दिखाई देते हैं। पदों की भाषा अपेक्षकृत प्रकट और सुघट है।
3. **अलंकार-विधान:** कबीर ने रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति, रूपकातिशयोक्ति उपमा, विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। ये अलंकार उनकी कविता में अत्यन्त स्वभाविक रूप से प्रस्फुटित हुए हैं तथा बिम्ब-विधायक हैं। रूपक का यह विधान अति विशिष्ट है।

सुरति ढीकली लेज ल्यौं, मन नित ढोलनहार ।
कंवल कुंवा में प्रेम रस, पीवै बारम्बार ॥

- कबीर के रूपकों की स्थिति यह है कि उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (चंद, सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, औंधा कुआं आदि) को लेकर अलंकार का अद्‌भुत नमूना पेश किया है, जो सामान्य जनता के मानस पटल पर अपनी छाप छोड़ने में सफल रहा है।
- कबीर ने 'नलिनी' और 'सुवटा' को लक्ष्य करके अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत की व्यंजना द्वारा सुन्दर अन्योक्ति लिखी हैं। उन्होंने जायसी की भांति अनेक स्थानों पर समासोक्ति के द्वारा गूढ़ आध्यात्मिक व्यंजना की है-

जा कारण मैं ढूंढ़ता, सनमुख मिलिया आय ।
धनि काली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाय ॥

- **छन्द योजना:** कबीरदास ने अपने समय में प्रचलित अनेक छंदों का प्रयोग प्राय: सभी पदों में किया है। कबीर की छंद-योजना के सम्बन्ध में डॉ. गोविन्द निगुणायत का यह कथन दृष्टव्य है- "कबीर ने अधिकतर सधुक्कड़ी छंदों का प्रयोग किया है। उनमें सबसे प्रमुख साखी, सबद और रमैनी है। इन छन्दों के अतिरिक्त चौंतीस, कहरा, हिंडोला आदि और भी अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ हैं।
- प्राय: कबीरदास के 'बीजक' में निमन काव्य-रूपों का प्रयोग पाया जाता है ख्र (1) आदिमंगल, (2) रमैनी, (3) सबद अर्थात् गेयपद, (4) विप्रमतोसी, (5) बसन्त, (6) कहरा, (7) चाचर, (8) ग्यान चौंतीसा अर्थात् वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से प्रारम्भ करके पद लिखना, (9) बेलि (10) विरहुली (सांप का विष उतारने वाला गान), (11) हिंडोला और (12) साखी (दोहे) अस्तु।
- **गुण की स्थिति:** कबीर की रचना में ओजगुण तथा प्रसाद गुण की प्रधानता है। माधुर्य गुण भी यत्र-तत्र समाविष्ट है। वक्रोक्तियों में कबीर का उक्ति-वैचित्र्य देखते ही बनता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की, तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। कबीर ने जिन तत्त्वों को अपनी रचना से ध्वनित करना चाहा है, उसके लिए कबीर की भाषा से ज्यादा साफ और जोरदार भाषा की सम्भावना भी नहीं है और जरूरत भी नहीं है।

प्र. सूरदास का विरह-वर्णन (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सूरदास भक्तिकालीन कृष्ण काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी कृतियों में मनोगत भावों और आंगिक चेष्टाओं का जैसे वर्णन मिलता है। वैसा हिन्दी में विरल है। सूर वात्सल्य के विश्व के श्रेष्ठ कवि हैं।

इसके अतिरक्त श्रृंगार में भी उनकी समता या तुलना का कोई भक्तिकालीन कवि नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, 'हिन्दी में श्रृंगार का रस राजस्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया है तो सूर ने।'

- सूर के काव्य में वियोग श्रृंगार का सुंदर वर्णन हुआ है। कवि की दृष्टि संयोग की अपेक्षा वियोग पर अधिक पड़ी है। विरह में प्रेम का रंग गाढ़ा हो गया है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2022
(द्वितीय प्रश्न पत्र)

खण्ड 'क' (पद्य साहित्य)

कबीर

प्र.

पीछै लगा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगै थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आंवौं हट्ट॥
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2022)

प्रसंग-

- प्रस्तुत दोहे में कबीर, गुरु को ज्ञान प्रदाता स्वीकार करते हुए उनकी कृपा से सही मार्ग प्राप्त होने की बात स्वीकार करते हैं। गुरु कृपा से ही वह संसार-सागर में डूबने से बचे हैं।

व्याख्या-

- कबीर कहते हैं कि वह भी सामान्य लोगों की तरह, सांसारिक और वैदिक परम्पराओं का आंख बंद करके अनुसरण कर रहे थे। परन्तु आगे चलने पर उन्हें सद्गुरु मिले। उन्होंने कृपा करके उनके हाथ में ज्ञानरूपी दीपक पकड़ा दिया।
- ज्ञानदीप के प्रकाश में ही वह जान पाए कि वह तो अज्ञान के मार्ग पर जा रहे थे। इस प्रकार गुरुकृपा से ही वह ईश्वर भक्ति के सीधे-सादे मार्ग का दर्शन पा सके।
- कबीर कहते हैं कि वह भी अज्ञानी जनों की भांति अहंकार रूपी बेड़े पर सवार होकर संसार-सागर से पार होने की चेष्टा कर रहे थे। अहंकार का जर्जर बेड़ा उन्हें भवसागर-माया-मोह आदि में डुबोने ही वाला था, परन्तु गुरुकृपा रूपी लहर ने टक्कर देकर उन्हें चौंका दिया, सचेत कर दिया।
- गुरु कृपा के प्रकाश में ही उनको ज्ञात हुआ कि वह अन्धकार का बेड़ा तो नितान्त जर्जर स्थिति में था और वह डूबने ही वाले थे।
- अत: वह तुरन्त उस पर से उतर पड़े। उन्होंने अहंकार का परित्याग करके गुरु द्वारा प्रदर्शित मोक्ष मार्ग को अपना लिया।

विशेष-

- भाषा में विभिन्न भाषाओं के शब्दों को मुक्त भाव से प्रयोग हुआ है।
- शैली उपदेशात्मक है।
- यह बताया गया है कि गुरु के बिना ज्ञान तथा संसार से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है।
- लोकाचार और वैदिक कर्मकाण्ड से ऊपर उठकर, परमात्मा की सहज भक्ति करने से ही मनुष्य का उद्धार हो सकता है।
- दीपक और दीया हाथ में लक्षणा शक्ति का सौन्दर्य है।

प्र. कबीर-वाणी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कितनी प्रासंगिक है? उदाहरण सहित लिखिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2022)

उत्तर: कबीर युग दृष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। कबीर ने अपने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की चिरंतर समस्याओं को भी पहचाना।

- तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से मिला।
- उन्होंने जिन सामाजिक, सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी यथावत हैं।
- कबीरदास का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग-विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत प्रासंगिक है।
- मध्ययुग में कबीर और संतों की वाणी ने जो अलख जगाया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जितना तत्कालीन युग में था। कबीर अपने युग की उपज हैं। युगीन परिस्थितियों एवं समय की मांग ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा।
- वे सारग्राही महात्मा थे, जिन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी मत-मतांतरों के सार को ग्रहण किया। उन्हें अपने तर्क और अनुभव की कसौटी पर कसा, जो विश्वास, मान्यताएं, मानवता, नैतिकता एवं भक्ति की राह में व्यर्थ बाधक थे उनका विरोध किया।
- कबीर मानव मात्र के समानता के पक्षधर थे। उनके अनुसार ऊंचे कुल में जन्म लेने से या ब्राह्मण होने मात्र से कोई ऊंचा या श्रेष्ठ नहीं हो जाता। मनुष्य अपने आचरण एवं सुंदर कर्मों से ऊंचा बनता है। सोने के कलश में मदिरा भरा हो तो निंदनीय हो जाता हैं-

  "ऊंचे कुल का जनमियां, जे करणी ऊंच न होइ।
  सोबन कलस सुरै भरया, साधू निंदत सोइ॥"

- मध्यकालीन समाज में मुगलों के आधिपत्य और अत्याचारों के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमान विद्वेष ने आग पकड़ी होगी।

खण्ड 'ख' (गद्य साहित्य)

भारतेन्दु

प्र. 'भारत दुर्दशा' नाटक अंग्रेजी राज्य की अप्रत्यक्ष रूप से कटु और सच्ची आलोचना है। विश्लेषण कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2022)

उत्तर: भारत दुर्दशा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सन 1880 ई में रचित एक हिन्दी नाटक है। इसमें भारतेन्दु ने प्रतीकों के माध्यम से भारत की तत्कालीन स्थिति का चित्रण किया है। वे भारतवासियों से भारत की दुर्दशा पर रोने और फिर इस दुर्दशा का अन्त करने का प्रयास करने का आह्वान करते हैं।

भारतेन्दु का यह नाटक अपनी युगीन समस्याओं को उजागर करता है, उसका समाधान करता है।

- भारत दुर्दशा में भारतेन्दु ने अपने सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वर्तमान लक्ष्यहीन पतन की ओर उन्मुख भारत का वर्णन किया है।
- भारत दुर्दशा में अंग्रेजी राज की जितनी तीखी आलोचना है, उतनी ही तीखी भारतीय जनता की आत्म आलोचना भी है।
- इसमें एक ओर अंग्रेजी शासन और शोषण की बहुआयामी तस्वीरें हैं तो दूसरी ओर भारतीय जनता की काहिली, अंधविश्वास, भग्यवाद और जातिवाद के चित्र भी है। इन चित्रों में ही भारतीय जनता की गुलामी के बीज छिपे हैं। इसके व्यंग में बहुत पैनापन है वह मर्म को सीधे स्पर्श करता है।
- भारतेन्दु ब्रिटिश राज और आपसी कलह को भारत की दुर्दशा का मुख्य कारण मानते हैं। तत्पश्चात वे कुरीतियां, रोग, आलस्य, मदिरा, अंधकार, धर्म, संतोष, अपव्यय, फैशन, सिफारिश, लोभ, भय, स्वार्थपरता, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल, बाढ़ आदि को भी भारत दुर्दशा का कारण मानते हैं। लेकिन सबसे बड़ा कारण अंग्रेजों की भारत को लूटने की नीति को मानते हैं।
- अंग्रेजों ने अपना शासन मजबूत करने के लिये देश में शिक्षा व्यवस्था, कानून व्यवस्था, डाक सेवा, रेल सेवा, प्रिंटिंग प्रेस जैसी सुविधाओं का सृजन किया। पर यह सब कुछ अपने लिये, अपने शासन कार्य को आसान बनाने के लिये था।

ऐसे समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भारत दुर्दशा नाटक प्रकाशित हुआ। उन्होंने लिखा–

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।।

भारतेंदु के लिए यह तो आसान नहीं था कि वे अंग्रेजी राज्य व्यवस्था की खुलकर आलोचना करते। लेकिन अंधेर नगरी में उन्होंने विभिन्न अवसरों पर कभी स्पष्ट रूप से और कभी सांकेतिक रूप में अपनी बात कही है।

- नाटक के दूसरे दृश्य में जहां बाजार का दृश्य प्रस्तुत किया गया है, वहां विभिन्न सामग्री बेचने वाले लोग ग्राहकों को आकृष्ट करने के लिए जो बात कहते हैं उनमें उन्होंने अपने समय का खाका भी प्रस्तुत किया है और उसकी आलोचना भी।
- इस आलोचना की दो विशेषताएं हैं- एक तो, तत्कालीन नौकरशाही की तीखी आलोचना और दूसरी, भारतवासियों को अपनी कमजोरियों के प्रति आगाह करना।
- अंग्रेजों पर व्यंग्य ऐसी मीठी छुरी से किया गया है कि प्रशासन चाहते हुए भी लेखक का कुछ नहीं बिगाड़ सकता क्योंकि वह घासीराम तथा चूरन वाले के गानों का हिस्सा होकर आया है–

चूरन जब से हिन्द में आया।
इसका धन बल सभी घटाया।।
चूरन अमले सब जो खावे।
दूनी रिश्वत तुरत पचावे।।
चूरन साहब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।

- अंधेर नगरी समसामयिक संदर्भो का जीवन्त नाटक है। इसका संबंध ब्रिटिश शासक वर्ग से ही नहीं है। नाटक में व्यक्त यथार्थ और उसमें निहित विडंबना वर्तमान जनविरोधी पूंजी आश्रित सत्ताओं की भी है।
- भारतेंदु के इस नाटक में उनकी राजनीतिक-सामाजिक दृष्टि का भी इकाई में विश्लेषण किया गया है। अंधेर नगरी में उनकी स्पष्ट राजनीतिक दृष्टि व्यक्त हुई है।
- लेकिन इस राजनीतिक दृष्टि की सीमा यह है कि यह लोकतांत्रिक मूल्यों की ओर संकेत तो करती है, लेकिन जनता की शक्ति और अधिकारों को स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं कर पाती।
- हालांकि, इससे नाटक का महत्व और उसकी प्रासंगिकता कम नहीं हो जाती।

मोहन राकेश

प्र. 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका स्वाधीन चेता स्त्री के जीवन के स्वाभिमान और विडंबना को चरितार्थ करती है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2022)

उत्तर: मल्लिका 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक की नायिका है। वह कालिदास की प्रेमिका है जो प्रेम प्रसंग के दुखांत को अकेले ही भोगती है।

- मल्लिका का जीवन बिडम्बनाओं से भरा है। मां अम्बिका की मृत्यु के बाद उसका साहस टूट जाता है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(प्रथम प्रश्न-पत्र)

खण्ड `क' (हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

अपभ्रंश, अवहट्ठ और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप

प्र. अवहट्ठ की व्याकरणिक संरचना का स्वरूप
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: अवहट्ठ 'अपभ्रंश' शब्द का विकृत रूप है जिसे अपभ्रंश का अपभ्रंश या परवर्ती अपभ्रंश कहा जाता है। संस्कृत के सरलीकरण की जो प्रक्रिया पाली से प्रारंभ हुई थी वह अपभ्रंश में आकर हिंदी के समीप आने लगी तथा अवहट्ठ तक आकर इसके विकास की गति तीव्र हो गई। यह आधुनिक भारतीय भाषाओं एवं अपभ्रंश के बीच की संक्रमणकालीन भाषा है तथा इसका कालखंड 900 ई.-1100 ई. तक माना जाता है।

- जहां तक इसके व्याकरणिक स्वरूप की बात है तो इसे निम्न भागों में विभाजित कर देखा जा सकता है।

व्याकरणिक तत्व

संज्ञा तथा कारक व्यवस्था | लिंग संरचना | वचन व्यवस्था | सर्वनाम व्यवस्था | विशेषण व्यवस्था | क्रिया व्यवस्था | काल संरचना

संज्ञा तथा कारक व्यवस्था

- सभी प्रतिपादिक 'अकरांत' और स्वरांत होने लगे।
- निर्विभक्तिक या लुप्तविभक्तिक के प्रयोग बढ़ गए।
- विभक्तियों और परसर्गों दोनों के साथ-साथ प्रयोग भी होने लगे थे। जैसे-'युवराजन्हि मांझ तान्हि केरो पुत्र'

अवहट्ठ में परसर्गों की संख्या बढ़ गई तथा निम्न परासर्ग पाए जाते हैं।

कर्त्ता-ने	अधिकरण-मांझ, महिं
कर्म-केहि, केहिं	सम्प्रदान-केहि, लागि
अपादान-से, सउं	

- अपभ्रंश में प्रयोग होने वाला 'हिं' विभक्ति अवहट्ठ में 'हि' हो गया। जैसे- मणहिं-मणहि
- डॉ. तगारे के अनुसार कर्त्ता की 'ए' विभक्ति इस भाषा की प्रमुख विशेषता है।

लिंग: अपभ्रंश की तरह अवहट्ठ में भी पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दो ही लिंग थे।

वचन: इसमें प्रमुख रूप से दो वचन मिलते हैं, द्विवचन का लोप हो गया तथा संज्ञा पदों के बहुवचन के लिए 'न्ह' या 'न्हि' परसर्ग का प्रयोग होता है। जैसे- 'हाथन्ह'

सर्वनाम: अवहट्ठ भाषा में कई नए सर्वनाम का प्रयोग दिखाई देता है जैसे -

उत्तम पुरुष - मैं, हौं, मेरा
मध्यम पुरुष - तुम, तुम्ह, तुम्हार
अन्य पुरुष - वह, अन्य

विशेषण: कृदंतीय विशेषणों के विकास के साथ-साथ विशेष्य के लिंग वचन के अनुसार परिवर्तित होने लगे थे संख्या वाचक विशेषण जैसे- सात-दस तथा सार्वनामिक विशेषण- जैसे- अइस, ऐसो का प्रयोग होने लगा था।

क्रिया व्यवस्था: कृदंतों के सहारे क्रिया निर्माण की परम्परा आरंभ हो गई थी तथा इसमें धातु रूप- चल, उठ तथा भूतकालिक कृदंत - मेल, कहल का प्रयोग होने लगा।

- प्रेरणार्थक क्रिया के रूप में 'पैढाव' तथा सहायक क्रिया का रूप है, 'छ', 'रह' प्रयोग में आने लगे।

काल व्यवस्था

तीनों कालों में निम्न स्वरूप विकसित हुए।

- वर्तमान काल - जात, करत, करन्ता, करन्ते
- भूत काल - इससे 'ल' रूप चलल का प्रयोग
- भविष्य काल - 'ब' रूप जैसे - खाइब तथा 'ह' रूप करहि का प्रयोग होने लगा था। इस प्रकार अवहट्ठ की व्याकरणिक स्वरूप अपभ्रंश और हिंदी के बीच की अवस्था है जिसमें दो अतिरिक्त स्वर 'ए' और 'औ' का प्रयोग होने लगा तथा स्त्रीलिंग शब्द 'आकारांत' होने लगे थे, जैसे-शिक्षा-सीख

प्र. अपभ्रंश और प्रारंभिक हिन्दी के व्याकरणीक स्वरूप में प्रमुख अंतर (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: अपभ्रंश और प्राम्भिक हिंदी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए दोनों के बीच व्याकरण के स्तर पर अंतर स्पष्ट करना है।

उत्तर: अपनी व्याकरणिक विशेषताओं के कारण ही आरम्भिक हिन्दी की वियोगात्मक प्रक्रिया आगे बढ़ी है। नए-नए व्याकरणिक प्रत्यय, विशेषत: परसर्ग और क्रिदंतीय रूप विकसित हुए है। बहुत थोड़े सविभक्तिक प्रयोग हिन्दी में मिलते हैं। रचना की दृष्टि से संस्कृत, पालि, प्राकृत भाषाएँ योगात्मक थी। नियोगात्मक स्पष्ट रूप भी अपभ्रंश से प्रारम्भ हुई और आरम्भिक हिन्दी बहुत हद तक नियोगात्मक हो गयी।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(प्रथम प्रश्न-पत्र)

खण्ड 'ख' (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा

प्र. रामचन्द्र शुक्ल के साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की एक लम्बी परम्परा रही है जो अनौपचारिक इतिहास लेखन जिसमें भक्तमाल, कविमाल, कालिदास हजारा के योगदान से आरंभ हुई थी तथा औपचारिक इतिहास लेखन जिसमें 'गार्स त तासी' शिव सिंह सेंगर जॉर्ज ग्रियर्सन तथा मिश्रबंधु के योगदान से विकसित हुई।

परन्तु हिन्दी साहित्य लेखन की इस सदीर्घ परंपरा में एक मुख्य बदलाव आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास लेखन को माना जाता है इसलिए इस परम्परा का केन्द्र बिंदु आचार्य शुक्ल बन जाते हैं।

- आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता यह है की उन्होंने इसे जनता की चित्रवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब माना है।

विशेषता

स्पष्ट और विकसित लेखन: आचार्य शुक्ल जी की इतिहास दृष्टि पूर्णत: स्पष्ट और परिपक्व है क्योंकि उनका मानना है की प्रत्येक देश का साहित्य जनता की चित्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब है तथा चित्रवृत्ति के बदलने से साहित्य भी बदल जाता है तथा इनके बदलने के पर्याप्त राजनीतिक सामाजिक साम्प्रदायिक तथा धार्मिक कारण होते हैं।

प्रत्यक्षवादी इतिहास बोध: शुक्ल जी ने इतिहास के लेखन में प्रत्यक्षवादी या विधेयवादी सिद्धांत को अपनाया है जिसके अंतर्गत किसी कार्य की व्याख्या निश्चित व वस्तुनिष्ठ कारणों के आधार पर किया जाता है।

शुक्ल जी ने जाति, वातावरण व रचना का क्षण तत्वों के माध्यम से साहित्येतिहास लेखन किया है तथा भक्ति आंदोलन का उद्‌भव इसी आधार पर इस्लामी आक्रमण का आधार बनते है।

शुक्ल जी ने अपने दृष्टिकोण के द्वारा वर्षो से चली आ रही हिन्दी साहित्य की इस समस्या का समाधान कर 900 वर्षो के साहित्य की चार कालों में विभाजित कर उसका नामकरण किया व जो निम्नवत हैं-

वीरगाथा काल	-	संख्या 1050-1375
भक्तिकाल	-	संख्या 1375-1700
रीतिकाल	-	संख्या 1700-1900
आधुनिक काल	-	संख्या 1900-अघतन

- इन विभाजनों के साथ-साथ उन्होंने विविध कालों का भी वैज्ञानिक विभाजन किया है। जैसे-

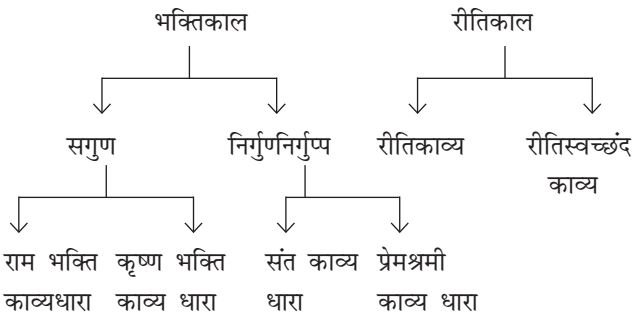

- **कविता सम्प्रेषण बाधक तत्वों की पहचान:** शुक्ल जी ने कविता के सम्प्रेषण को बाधित करने वाले प्रतीकों जैसे अलंकार, रहस्यवाद प्रतिकवाद, विलष्टता के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग तथा बुद्धिप्रेरित वक्रता का विरोध किया है।
- **रचना का मूल्यांकन:** शुक्ल जी ने अनौपचारिक इतिहास लेखन जिसमें सिर्फ रचनाकारों के नाम तथा परिचय प्रदान किया गया था उसके विपरीत रचनाकारों की रचना का मूल्यांकन करते थे।
- यही कारण है की वह तुलसी को हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं तथा कबीर को कवि की श्रेणी से बाहर करते हैं हालांकि द्विवेदी जी ने कबीर को उत्कृष्ट कोटि का कवि माना है। शुक्ल जी ने रचना का वास्तविक मूल्यांकन गद्य को माना है।
- लेखन की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है की उन्होंने रस की लोकमंगलवादी व्याख्या प्रस्तुत की तथा पारम्परिक रसवादी तथा आधुनिक समाजनिष्ठ दृष्टि को छोड़ दिया है। शुक्ल जी ने इसी कारण 'तुलसी को लोकमंगल' का कवि तथा सूरदास को लोकरंजन का कवि माना है।
- इस प्रकार स्पष्ट है की शुक्ल जी ने अपने साहित्येतिहास लेखन में गार्सा द तासी, शिव सेंगर की परम्परा को आगे बढ़ाया तथा आगे चलकर हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी, जैसे मूर्धन्य लेखकों के साहित्येतिहास का आधार तैयार किया जो आगे रामकुमार वर्मा, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा और परिमार्जित तथा परिष्कृत हो गई।

प्र. हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य के इतिहास लेखन की दृष्टि
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा की चर्चा करते हुए साहित्य के इतिहास लेखन के प्रति हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जो अपने विचार प्रकट किए हैं, उसका मूल्यांकन करना है।

उत्तर: हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का पहला प्रयास एक फ्रांसीसी विद्वान गार्सा-द-तासी ने किया। उन्होंने फ्रांसीसी भाषा में "इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी" नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें हिन्दी और उर्दू के अनेक कवियों का परिचय वर्णक्रमानुसार दिया गया है। पर इसमें लेखक ने अपने को रचनाकार के जीवनवृत्त और रचनाओं के परिचय तक ही सीमित रखा है। इसमें काल-विभाजन, युगीन-प्रवृत्तियों और परंपरा के विवेचन का कोई प्रयास नहीं किया गया है। इसलिए इस ग्रंथ को "इतिहास" की अपेक्षा "वृत्त संग्रह" मानना अधिक उपयुक्त है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और इतिहास-लेखन

आचाग्र रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय जहां युगीन परिस्थितियों पर बल दिया वहां आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परंपरा को इतिहास लेखन का आधार बनाया। उन्होंने रामचंद्र शुक्ल के युग रुचिवादी दृष्टिकोण के समानान्तर अपने परम्परापरक दृष्टिकोण को स्थापित करके हिंदी साहित्य के अध्येताओं के लिए एक व्यापक और संतुलित इतिहास-दर्शन की भूमिका तैयार की।

दरअसल परंपरा और युगीन परिस्थितियों के सम्यक मूल्यांकन से संतुलित इतिहास का निर्माण हो सकता है, अत: यह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के मत एक दूसरे के पूरक हैं। हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल से लेकर राम विलास शर्मा तक इतिहास लेखन की एक विकासशील परंपरा देखने को मिलती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जहां युगीन परिस्थितियों पर बल दिया है, वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परंपरा पर अपना मूल्यांकन आधारित किया है। पर आचार्य द्विवेदी की इतिहास दृष्टि आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण की विरोधी नहीं बल्कि पूरक है।

भविष्य के इतिहासकार दोनों इतिहास दृष्टियों का एक साथ उपयोग कर संतुलित इतिहास लिख सकते हैं और साहित्य की विकासशील परंपरा और प्रवृत्ति का पुनर्मूल्यांकन कर सकते हैं। राम विलास शर्मा ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के संकेत सूत्रों को अपनी दृष्टि से पल्लवित और सुनियोजित किया है।

निष्कर्ष:

वस्तुत: हिन्दी-साहित्य के जातीय रूप और विशेषताओं के विकास का प्रश्न उनके इतिहास लेखन में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है। इस दृष्टि से उन्होंने हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखन को नयी जमीन और नयी दिशा प्रदान की है।

प्र. हिन्दी में साहित्येतिहास लेखन की परंपरा और महत्त्व
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: आयार्च शुक्ल के अनुसार ''प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्रवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चितवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।''

साहित्य का इतिहास न तो अतीत की अंधपूजा है और न ही वर्तमान का तिरस्कार, न यह महान प्रतिभाओं और रचनाओं का स्तुतिगायन है और न ही तिथियों और तथ्यों का संग्रह मात्र। साहित्य का इतिहास ऐतिहासिक दृष्टि से साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन और मूल्यांकन है। साहित्य की प्रवृत्ति के निर्धारण में एक ओर जहां अंग्रेज इतिहासकार तेन के अनुसार जातीय परम्पराओं, राष्ट्रीय सामाजिक वातावरण एवं साहित्यिक सामयिक परिस्थितियों की अहम भूमिका है वहीं दूसरी ओर रचनाकर के जीवन-दर्शन और प्रतिभा का भी कम महत्व नहीं है। बदलते परिप्रेक्ष्य में इतिहास-लेखन का दृष्टिकोण भी बदलता है इसलिए साहित्य वही रहने पर भी साहित्य का नया-नया इतिहास लिखा जाता है।

साहित्य में इतिहास-लेखन की परंपरा को दो भागों में बांट सकते हैं- आचार्य शुक्ल से पूर्व का इतिहास-लेखन, शुक्ल और शुक्लोत्तर इतिहास-लेखन।

आचार्य शुक्ल से पूर्व छ: इतिहासनुमा पुस्तकें प्रकाशित हुईं-

- गार्सा द तासी: इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐंन्दुई ऐं ऐन्दुस्ताकी
- शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज'
- जार्ज ग्रियर्सन कृत 'द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नादर्न हिन्दुस्तान'
- मिश्रबंधु कृत 'मिश्रबंधु विनोद'
- ग्रीव्ज कृत 'ए स्केच ऑफ हिन्दी लिटरेचर'
- पादरी एफ. ई. के कृत 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर'
- आचार्य शुक्ल और उनके बाद की प्रमुख इतिहास की पुस्तकें हैं:-
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य की भूमिका
- डॉ. रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक विकास
- नागरी प्रचारिणी सभा- 'हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (संपादित)
- डॉ. नगेंद्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास (संपादित)
- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- हिन्दी साहित्य का अतीत (दो खंडों में)
- गणपति चन्द्र गुप्त- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (दो खंडों में)
- पं. सुधाकर पांडेय एवं डॉ. कुसमाकर पांडेय- हिन्दी साहित्य चिंतन (संपादित)

साहित्य के इतिहास-लेखन में जिन स्रोतों की सहायता ली जाती है, वे इस प्रकार हैं-

- साहित्यकारों की रचनाएं
- उक्त रचनाओं के परिचयात्मक ग्रंथ
- साहित्य-ग्रंथों की टीका या आलोचनात्मक ग्रंथ

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(द्वितीय प्रश्न पत्र)

खण्ड `क' (पद्य साहित्य)

कबीर

प्र. ''कबीर वाणी के डिक्टेरर हैं।'' इस कथन के आलोक में कबीर की अभिव्यंजना शैली पर विचार कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: कबीर भक्ति काल के निर्गुण मार्गी शाखा के प्रमुख व्यक्तित्व हैं तथा उनके बारे में यह माना गया है कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे इसके बावजूद उनकी कविता तथा काव्य में जो भाषाई चमत्कार दिखाई देता है वह आलोचकों को हैरान करती है इसलिए जहां रामचन्द्र शुक्ल यह कहते हैं कि उनकी भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी उनकी उक्तियां कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार पैदा करती है तो दूसरी तरफ आचार्य द्विवेदी उनकी वाणी का मूल्यांकन करते हुए उन्हें वाणी का डिक्टेटर कहते हैं।

- कबीर दास जी ने जिस प्रकार से स्वयं यह उद्घोषणा कि थी कि 'मसि कागद छुओं नहीं कलम गहयो नहीं हाथ' उसके बाद उन्होंने जिस प्रकार से लोकभाषा का प्रयोग किया तथा संदर्भ विशेष में सटीक शब्दों का प्रयोग किया वह उन्हें वाणी का डिक्टेटर बनाता है। उनका डिक्टेटरपना इस बात से झलकता है कि वह बिना कुछ सोचे-समझे किसी से डरे आत्मविश्वास के साथ मौलवियों पर कटाक्ष करते समय उर्दू-फारसी के शब्दों की बाढ़ ला देते है तो दूसरी तरफ पंडितों पर कटाक्ष करते समय तत्सम-तद्भव शब्दों का प्रयोग उसी विद्धता से करते है।
  जैसे- मैं तो कूता राम का, मुतिया मेरा नाम
  गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाऊं
- यहां 'मुतिया' शब्द का प्रयोग कबीर ही कर सकते है क्योंकि वह अभिजात्यवादी सोच से बाहर बिल्कुल मदेस बोली को अपनाते हैं।
- उनकी डिक्टेटरपना का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण है उनकी व्यंग्यात्मक शैली जिसमें वह ऐसा व्यंग्य करते है जिसमें सुनने वाला केवल तिलमिला कर रह जाता है।
- पंडितों पर व्यंग्य करते हुए जब वह कहते हैं कि 'मूंड मूड़ाए हरि मिले, सब कोई लेय मुड़ाय' तथा मौलवियों पर व्यंग्य करते हुए जब वह यह कहते है कि "कॉकर पाथर जोरि के, मस्जिद लइ बनाय, ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय" तब अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खाने वाला केवल धूल झाड़कर चल देने के सिवा कोई रास्ता नहीं पाता है।
- कबीर के ईश्वर मिलन की कविता में सूफियाना भाव तथा प्रतीकों के माध्यम से अपनी बातों को कहने की शैली भी उन्हें भाषा का डिक्टेटर साबित करती है जब कबीर कहते हैं-
  तलफै बिन बालम मोर जिया
  दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया या फिर
  चलती चाकी देख कर, दिया कबीरा रोय
- तो वे विद्यापति, सूर और बिहारी की भाषिक क्षमताओं को चुनौती पेश करते है। कबीर वाणी के डिक्टेटर इसलिए भी कहलाते हैं कि उन्होंने संस्कृत भाषा के स्थान पर लोकसभा का प्रयोग किया तथा पंचमेल खिचड़ी भाषा का ईजाद किया। वो साफ-साफ कहते हैं कि 'जिन तुम जान्यौं गीति है, वह निज ब्रह्म विचार' इसलिए उन्होंने संस्कृत को कूपजल तथा भाषा को बहता नीर बताया है।
- कबीर वस्तुत: बिम्ब एवं अलंकारों के मामलों में भी डिक्टेटर हैं वह दृश्य बिम्ब (जल में कुल, कुम्भ में जल) तथा चमक अलंकार (माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर) का प्रयोग करते हैं तो दूसरी तरफ वे उल्टबांसी का जबरदस्त प्रयोग करते हैं, जो प्रतीकात्मक या संघा भाषा है। जैसे- नैया विच नदिया डूबति जाय।
- इस प्रकार कबीर अपनी मनमर्जी शैली, व्यंग्यात्मक लहजे तथा लोकभाषा के सटीक प्रयोग के कारण वाणी के डिक्टेटर कहलाते हैं इसलिए द्विवेदी जी ने कहा है कि- भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है-'वन गया है सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर'। भाषा खुद कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को मनाहिं कर सके।"

प्र. कबीर प्रेम न चषिया, चषि न लीया साव।
सूनें घर का पाहुणां, ज्यूं आया त्यूं जाव॥
कबीर चित चमंकिया, यहूं दिसि लागी लाइ।
हरि सुमिरण हाथू घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ॥
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रसंग: प्रस्तुत पद्यांश कबीरदास द्वारा विरचित है, जो कबीर ग्रंथावली में संग्रहित है। कबीरदास जी हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

प्रस्तुत पद्यांश साखी के 'सुमिरण कौ अंग' से उधृत है। संत कबीर ने ईश्वर या आराध्य के नाम स्मरण को बहुत महत्व दिया है। इसी नाम-स्मरण की महिमा का वर्णन 'सुमिरण कौ अंग' में किया गया है।

व्याख्या: कबीरदास जी प्रेम के पुजारी थे, वह भक्ति को भी प्रेम से जोड़कर देखते थे। उनका मानना था कि एक तरफ सभी प्रकार की विद्या प्राप्त की जाए, किंतु प्रेम के बिना वह सब अधूरी है। पंडित वही व्यक्ति कहलाता है जो प्रेम करना जानता है।

कबीर कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने प्रेम को चखा नहीं, और चख कर स्वाद नहीं लिया, वह उस अतिथि के समान है जो सूने, निर्जन घर में जैसा आता है, वैसा ही चला भी जाता है, कुछ प्राप्त नहीं कर पाता।

इस सन्दर्भ में कबीर कहते हैं कि चारों तरफ विषय विकारों की अग्नि लगी है। संसार विषय वासना (काम, क्रोध, मद, मोह माया, मात्सर्य) की अग्नि में जल रहा है। हरी सुमिरण रूपी घड़े (घड़े के जल) से तुरंत इसे बुझा लेना चाहिए।

कबीर की इस साखी का मूल भाव है की समस्त संसार विषय वासना रूपी संताप से पीड़ित है जिसे केवल हरी के नाम के सुमिरण से ही दूर किया जा सकता है।

हरी नाम के नाम से मन चमत्कृत हो गया है। चमत्कृत से आशय है की वह चौकन्ना हो गया है। प्रस्तुत साखी में सांगरूपक अलंकार की व्यंजना हुई है।

विशेष

- कबीर दास ने प्रेम को सर्वोच्य माना है।
- प्रभु (हरी) की अराधना करने से मनुष्य सभी प्रकारों के विकारों से मुक्त हो जाता है।

प्र. कबीरदास की रचना-संसार में निहित समाज-चिंता पर प्रकाश डालिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: कबीर दास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना जागृत करने का जो प्रयास किया है, साथ ही सामाजिक विडंबनाओं पर किस प्रकार चोट किया है, उसका उल्लेख करना है।

उत्तर: कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में पहली धारण ा ये बनती है कि वे समाज सुधारक थे। वस्तुत: कबीर बाह्याडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के विरोधी थे। परन्तु सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय वे सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे।

उन्होंने सबकी आलोचना की, किन्तु उनका सारतत्व समाहित किया। एक भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया। उन्हें मानव समाज की विषमाताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का ही एक पक्ष है।

कबीर की सामाजिक चेतना या समाज सुधारक व्यक्तित्व पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्याओं को धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या से बिल्कुल अलग करके देखा जा सकता है। एक क्षण के लिए मध्यकालीन या कबीर कालीन समाज को दरकिनार करके अपने आधुनिक समाज को देख लिया जाए तो बात कुछ अधिक साफ ढंग से समझ में आ जायेगी। आज के समाज की अनेक समस्याओं में से सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है धार्मिक कट्टरपन। इसी धार्मिक कट्टरता या साम्प्रदायिकता के कारण एक आदमी दूसरे आदमी के खून का प्यासा बन जाता है जिसके कारण समाज में व्यक्तियों का सह अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है जो सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर इत्यादि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों की पहचान करें, एक मौलिक व समयानुकूल जीवन दृष्टि प्रस्तावित करें और इस जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करें। कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें तो हम समझ सकते हैं कि वे जिस सामंतवादी युग में थे वह सामाजिक दृष्टि से अपकर्ष का काल था। विलासिता जैसे मूल्य समाज में फैले हुए थे। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था।

वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव समाज को खंडित किया था। धर्म का आडम्बरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था और भाषा से लेकर जीवन शैली तक एक प्रकार का आभिजात्य उच्च वर्गों की मानसिकता में बैठा हुआ था। ऐसे समय में कबीर ने मानव मात्र की एकता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि ''साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'' वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे क्योंकि 'सुखिया' संसार खाता और सोता रहा जबकि संसार की वास्तविकता समझकर 'दुखिया' कबीर जागते और रोते रहे। यह निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है-

''सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।''

यह संवेदनशीलता निष्क्रिय नहीं थी बल्कि इतनी ज्यादा दृढ़ता और आत्मविश्वास से भरी थी कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए कबीर अपना घर फूँकने को पूर्णत: तैयार थे-

''हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।'

कबीर के समाज के प्रति यही दृष्टिकोण वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, भाषाई आभिजात्य और धार्मिक आडम्बरों के कठोर खंडन में साफ दिखाई पड़ता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जहाँ जाति-भेद, वर्ण-भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ पति-पत्नी का सम्बन्ध आध्यात्मिक बन्धन है, जहाँ व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का मूलाधार धर्म हैं, वहाँ सामाजिकता धार्मिकता से अलग कैसे हो सकती है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(द्वितीय प्रश्न पत्र)

खण्ड 'ख' (गद्य साहित्य)

भारतेन्दु

प्र. 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' निबंध की तात्विक समीक्षा कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2021)

उत्तर: प्रस्तुत निबंध भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा जुलाई 1881 में प्रकाशित किया गया था जिसमें उन्होंने साहित्य के सार्वजनिक, सार्वकालिक, एवं सार्वभौमिक पक्ष को उदघाटित करते हुए तर्कसंगत शैली को प्रतिष्ठापित किया है।

- इस निबंध में भट्ट जी ने साहित्य को व्यक्ति के संदर्भ में न देखकर जनसमूह के हृदय के विकास के संदर्भ में देखा है जो शुक्ल जी की इस मान्यता से मेल खाता है की 'साहित्य जनता की चित्रवृत्तियों का संचित्र प्रतिबिम्ब होता है"।
- साहित्य को लेखक ने अनिवार्यता; भवोच्छवास का हृदयग्रही बिम्ब कहा है। उनका कथन है की किसी भी जाति का उल्लास-विषाद, उसके स्वप्न-महास्वप्न उसकी त्रासदी, हताशा, कुंठा, कामना, वासना, जय-पराजय सभी उसके साहित्य में मुखर हो उठते है इसलिए साहित्य को भट्ट जी ने जनसमूह के चित्र का चित्रपट कहा है।
- भट्ट जी के अनुसार किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय-समय के अभ्यान्तरिक भाव हममें परिस्फुट हो सकते हैं।
- भट्ट जी ने अपने इस विचार के आधार पर वैदिक साहित्य से लेकर भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य तक विचार किया है।
- उन्होंने माना कि किसी भी कौम, जाति, समाज और देश के युद्ध इतिहास तथा जातीय चेतना के विकासात्मक इतिहास में भेद किया जा सकता है तथा सामान्य इतिहास से कौम के बाहरी ढांचे का इतिहास जाना जा सकता है पर साहित्य से उस कौम की जातीय चेतना के भाव पक्षए विचार पक्ष एवं कर्मपरक मानस् तत्वों को बखूबी समझा जा सकता है।
- इसी आधार पर उन्होंने पुराने भारतीय वैदिक/संस्कृति साहित्य से लेकर प्राकृत भाषाओं से होते हुए परवर्ती अपभ्रंशों तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं एवं हिन्दी के भाषिक समाजों का अत्यन्त भव्य चित्र प्रस्तुत किया है।
- भट्ट जी रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों की व्याख्या करते हुए उदाहरण देते है कि रामायण उस युग की अभिव्यक्ति है जिसमें दो भाई एक दूसरे के लिए सारा राजपाठ न्योछावर कर देते हैं ऐ वहीं महाभारत में उस स्थिति का वर्णन है जहां भाई का स्वार्थ इस हद तक बढ़ा हुआ है कि एक सूई के अग्रभाग के कारण समूचे कुल का नाश हो जाता है।
- भट्ट जी बौद्ध, पुराण एवं तांत्रिक परम्परा की भी चर्चा करते है तथा इस निबंध में भारतेन्दु युगीन हिंदी नवजागरण के अंतरविरोधों की पहचान की गई है तथा बार-बार देश को आर्यों का देश एवं 'हिन्दू जाति' जैसे पदो से पहचानते है जो आगे चलकर हिंदी नवजागरण की सीमा बन जाती है।
- निकर्षत; कहा जा सकता है कि यह एक अत्यन्त सफल निबंध है। यद्यपि इसकी भाषा तत्सम प्रधान है परन्तु लेखक ने कहीं-कहीं तद्भव एवं देशज-विदेशज का भी प्रयोग किया है। तथा इस निबंध की वैचारिक परिपक्वता शुक्ल जी के साहित्य संबंधी चिंतन से मिलती है।

प्र. 'भारत-दुर्दशा' अतीत गौरव की चमकदार स्मृति है, आंसू भरा वर्तमान है और भविष्य-निर्माण की भव्य प्रेरणा है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2020)

उत्तर: 'भारत-दुर्दशा' नाटक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा 1875 में रचित एक लघु नाटक है जिसमें भारतेन्दु ने तात्कालीन भारत की दुर्दशा को चित्रित किया है साथ ही इस नाटक में वह भारत के गौरवपूर्ण अतीत को भी उभारते हैं तथा नवजागरण चेतना तथा राष्ट्रीय बोध से युक्त इस नाटक में वे भारत को दुर्दशा से बाहर निकालकर एक गौरवपूर्ण पथ की ओर अग्रसर करने का मार्ग भी बता जाते है।

- भारतेन्दु, भारत के लोगों में नवजागरण का भाव भरने के लिए अतीत के प्रति रोमानियत दृष्टिकोण अपनाते है तथा नाटक के पहले अंक में और अंतिम अंकों में भारत की महानता का वर्णन करते हुए कहते है कि-
  सबके पहले जेहि ईश्वर धन बल दीनो
  सबसे पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।
- **वस्तुत:** भारतेन्दु का अतीत के प्रति गौरव भाव का उद्देश्य साधारण जन में नवजागरण तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान का भाव पैदा करना था इसलिए यह गौरवशाली अतीत का वर्णन लाजमी था। भारतीय साहित्य की परम्परा में जयशंकर प्रसाद जब कहते हैं- कहीं से हम आए थे नहीं, हमारी जन्मभूमि है यहीं' तथा गुप्त जी
- "जिनका कुछ भी न था अतीत गावे वे क्या उसके गीत
- हम क्यों भूले उसकी याद, जिसमें है अपना आहलाद"

- कहते हैं तब यह भी अतीत के गौरवमय प्रस्तुति ही करते है।
- इसी प्रकार भारतेन्दु ने इस नाटक में भारत की वर्तमान दुर्दशा या यूं कहें अपने काल की दुर्दशा का आंसू भरा वर्णन किया है तथा उन सभी कारणों को एक-एक कर गिनाया जो इस दुर्दशा के लिए जिम्मेदार थे।
- भरत में दुर्दशा में भारतेन्दु के समक्ष मूल समस्या अध्यात्मिक न होकर इहलौकिक है तथा उनकी मुख्य चिंता आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक सुधार की है इसलिए उन्होंने इन सभी का वर्णन भार्मिकता से किया है। जैसे-

1. वह अंग्रेजों के राज में अर्थव्यवस्था की खराब हालत के लिए धनवर्हिगमन को मुख्य कारण मानते हैं तथा करों के बोझ से दबी जनता का वर्णन करते हैं
- 'अंग्रेज राज सुख साज सजै सब भारी
- पैधन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी'
- सबसे ऊपर टिक्कस की आफत आई।
- हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाए।

2. भारतेन्दु अपने समय की भारत दुर्दशा का कारण कहीं बाहर ढूंढने के बजाए आत्ममूल्यांकन किया है तथा इस दुर्दशा का कारण स्वयं ढूंढा है जो- धर्म, संतोष, सामाजिक कुरीतियों, आलस्य, मदिरा पान, अज्ञानता तथा रोग के रूप तथा भाग्यवादी रवैये में मौजूद है।
3. भारतेन्दु के अनुसार धर्म की वजह से लाग स्नेह शून्य हो गए है तथा शेष शैव-शाक्त आदि मतों के कारण साम्प्रदायिकता की समस्या पैदा हो गई है जैसे-
- शैव शाक्त वैष्णव, अनेक मत प्रगहि चलाए
- जाति अनेकन करि नीच अरु ऊंच बनाए

4. जाति व्यवस्था के साथ-साथ वह आलस्य तथा संतोष एवं मदिरा पान को भी इस दुर्दशा का कारण बताते हैं
- जैसे- दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा
- मर जाना पर उठ कर कहीं जाना नहीं अच्छा (आलस्य)
- मदवा पीले पागल जीव बीत्यों जात (मदिरापान)

5. इन सबसे बढ़कर उन्होंने बुद्धिजीवी वर्ग की निष्क्रियता को इस दुर्दशा का कारण माना है। अपने पांचों अंक में उन्होंने दिखाया है कि जो नेतृत्वशाली बुद्धिजीवी वर्ग सक्रिय है वह किस प्रकार वैचारिक स्थूलता, कायरता और निष्क्रियता से भरा है।
- एडिटर सिर्फ महान लेखों से क्रांति करना चाहता है तो सभापति भी दूर दृष्टि व साहस से वंचित है। दूसरा देशी इतना कायर है कि डिसलोयाल्टी के आने पर मेज के नीचे छुप जाता है। ऐसा ही बोध बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति मुक्तिबोध में भी मिलता है।
- भारतेन्दु ने इस नाटक में सभी पहलुओं को समाहित किया है उपर्युक्त दो में जहां भारत के अतीत के गौरव को बताया है वही उसकी वर्तमान दशा का चित्रण भी किया है। पर इसके साथ-साथ उन्होंने एक सुंदर भविष्य का चित्र भी खींचा है तथा कई ऐसे समाधान का संकेत देते है जिससे भारत पुनः अपने गौरव को प्राप्त कर सकता है।
- जैसे- वह शिक्षा तथा ज्ञान को भारत की उन्नति का कारण बताते है तथा कहते है देखों विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है अब सोनो का समय नहीं हैं।
- इसके साथ ही वह आधुनिकता, नवजागरण तथा विज्ञान एवं कला के विकास को महत्व प्रदान करते हैं तथा अंधविश्वास, बाल विवाह, सामाजिक कुरितियों को छोड़कर आधुनिकता को अपनाने की बात कर एक सुंदर भविष्य का सपना संजोते हैं।
- **वस्तुतः** भारत दुर्दशा के माध्यम से भारतेन्दु की मूल कोशिश नवजागरण चेतना का प्रसार करने का है क्योंकि वे अपने दौर के नवजागरणवादी चिंतकों राजा राम मोहन राय, ईश्वर चंद विद्यासागर, कैशवचंद्रसेन से प्रभावित थे तथा वे साहित्य को समाज सुधार का माध्यम मानते है।
- वे शिक्षा के माध्यम से एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करते हुए कहते हैं कि- हाय यह कोई नहीं कहता की सब मिलकर इस प्रकार भारत दुर्दशा में व्यक्त उनकी राष्ट्रीयता की भावना समय के अनुसार नवीनता को ग्रहण करने वाली है। वे नवजागरण के मूल्यों पर विश्वास करते है तथा वह धर्म उसको मानते है जो समय के अनुसार नवीनता ग्रहण करे; विदेश शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्रों में उर्वरक एवं रम्य बना सके।
- इसलिए डॉ. जयनाथ नलिन कहते है कि- भारत दुर्दशा का अतीत के गौरव की चमकदार स्मृति है: आंसू भरा वर्तमान है और भविष्य-निर्माण की भव्य प्रेरणा है। और यही इस त्रासदीपूर्ण रचना का सार है।

प्र. भारत दुर्दशा नाटक में व्यंग्य को एक जबरदस्त हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया है। स्पष्ट कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2020)

प्रश्न की मांग: भारत दुर्दशा नाटक के माध्यम से तात्कालिन शासन व्यवस्था और भारतीय समाजिक व्यवस्था पर जो व्यंगात्मक चोट की गई है, उसका वर्णन करना है।

उत्तर: भारत दुर्दशा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा 1875 ई. में रचित एक लघु नाटक है जिसमें उनकी नवजागरण चेतना और राष्ट्रीय बोध विस्तृत रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

इस प्रतीकात्मक नाटक में भारतेन्दु ने भारत की दुर्दशा के सभी पक्षों को कुछ काल्पनिक प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट किया है।

भारतेंदु ने भारत दुर्दशा में प्रतिकात्मक पात्रों की सहायता से दुर्दशा के कारणों की खोज की, पहचान किया। जिसमें सबसे बड़ा कारण मदिरा, लोभ, अशिक्षा को माना उसकी पहचान कर भारतेंदु ने उसका साथ छोड़ने का आग्रह किया।

यह सभी वास्तव में आज समाज की जड़ें खोखली करने में अहम भूमिका निभा रही है। भारतेंदु ने जगह-जगह मदिरा व निर्लज्जता के माध्यम से समाज में एक निश्चित ही सार्थक संदेश दिया जो सर्वनाश का कारण है। उसके साथ न जाने का आग्रह किया। समाज में असंतोष, लज्जा, मदिरा दुर्देव आदि ने अपनी जड़ें इतनी जमा रखी है कि भारत भाग्य अपनी तमाम कोशिशों के बाद भी सफल नहीं हो पाता और अंत में कटार मारकर आत्महत्या कर लेता है।

भारत दुर्दशा में भारतेन्दु ने बताया है कि वर्तमान भारत किस प्रकार विनाश के मार्ग पर बढ़ रहा है। इसकी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक संरचनाएं पूर्णतः खंडित हो गई है और सबसे अधिक चिन्ता की बात यह है कि भारत के निवासी इस दुर्दशा को दूर करने के लिए प्रतिबद्ध भी नहीं दिखते।